Vidhyayana - ISSN 2454-8596

An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal

www.j.vidhyayanaejournal.org

Indexed in: ROAD & Google Scholar

महाभारत में दान माहात्म्य

झिंझुवाडीया धनजीभाई कानाभाई

शोधछात्र

सौराष्ट्र युनिवर्सिटी – राजकोट

प्रास्ताविक

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं धर्मग्रन्थों में दान का अत्यन्त महत्त्व माना गया है । नि:स्वार्थ भाव से और प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित दान से व्यक्ति को लौकिक तथा परलौकिक सुख एवं पुण्य की प्राप्ति होती है । दान का अर्थ है देने की क्रिया किसीको कुछ अर्पण करने की निष्काम भावना । धर्म के चार चरणों (सत्य, दया, तप और दान) में दान को प्रधान माना गया है। गीतामें श्रीकृष्णने कहा है कि यज्ञ, दान और तप मानवजीवन को पवित्र करनेवाले कार्य है ।[1] रामचरितमानस – में तुलसीदास कहते है कि परहित के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को कष्ट देने के समान कोई पाप नहीं है । हर तरह के लगाव और भाव को छोडने की शरुआत दान और क्षमा से ही होती है । तैत्तरीय उपनिषद के अनुसार दान श्रद्धा से देना चाहिए, अश्रद्धा से नहीं देना चाहिए, आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार देना चाहिए, भयसे देना चाहिए, लज्जासे देना चाहिए तथा पात्र-अपात्र का विवेक करके देना चाहिए ।[2] वेद, पुराण, उपनिषदादि अनेक धर्मग्रन्थों में दान की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है । महाभारत भारतीय साहित्य का पञ्चमवेद माना जाता है । वेदव्यास ने महाभारत में दान को पवित्र मानकर अनेक स्थानों पर उसकी महिमा का गुणगान किया है ।

(१) दान के प्रकार

हमारे धर्मग्रन्थोंमें दान को एक पवित्रं एवं अनिवार्य कार्य के रूप में स्वीकार किया गया है । महाभारत के अनुसार **‘लब्धस्य त्यागमित्यार्हुन भोगं न च सञ्चयम्’** अर्थात प्राप्त किये हुए धनको

---

[1] यज्ञदानतप: कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।। भगवद्गीता १८/०५

[2] श्रद्धयां देयम् । अश्रद्धायाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् ।
भिया देयम् । संविदा देयम् । तैत्तरीय उपनिषद १/११

भोगमें लगाना या संग्रह करके रखना उचित नहीं है, उसे दान करना ही उचित मार्ग है ।[3] महाभारतमें विद्यादान, भूमिदान, अन्नदान, कन्यादान और गौदान को उत्तम माना गया है । भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण कहते हैं कि दान देना ही कर्तव्य है – ऐसे भाव से जो दान देश तथा काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार न करनेवाले के प्रति दिया जाता है, वह सात्विक दान कहलाता है ।[4] जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा फलको दृष्टि में रखकर दिया जाता है वह राजस दान कहलाता है ।[5] जो दान बिना सत्कार के अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश – कालमें और कुपात्र के प्रति दिया जाता है, वह तामस दान कहलाता है ।[6]

(२)दानयोग्य पात्र

जिस व्यक्तिको दान दिया जाता है उसे दान का पात्र कहा जाता है । जिसके पास जिस समय जिस वस्तुका अभाव हो, उसे वही और उसी समय उस वस्तु के दान का पात्र माना गया है । भुखे, प्यासे, अनाथ, दरिद्र एवं भयभीत प्राणी क्रमशः अन्न, जल, वस्त्र, निर्वाह योग्य धन और अभयदान के पात्र माने जाते है । उनकी आतुरदशा ही पात्रता की पहचान है । इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ आचरणोंवाले विद्वान, ब्राह्मण, उत्तम ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी तथा सेवाव्रती लोग है – जिनको जिस वस्तुका दान देना शास्त्रोंमें कर्तव्य बतलाया गया है – वे सभी अपने अधिकारके अनुसार यथाशक्ति धन आदि सभी आवश्यक वस्तुओं के दानपात्र माने गये है ।

(३)दानपात्र के लक्षण

---

[3] महाभारत शान्तिपर्व २६/२८

[4] भगवद्गीता १७/२०

[5] भगवद्गीता १७/२१

[6] भगवद्गीता १७/२२

महाभारतमें मार्कण्डेयजी युधिष्ठिरको दानपात्र के लक्षण बताते हुए कहते है कि, ``दान लेनेवाला ब्राह्मण श्रोत्रिय हो, निर्धन हो, गृहस्थ हो, नित्य अग्निहोत्र करता हो, दरिद्रता के कारण जिसे स्त्री और पुत्रों के तिरस्कार सहने पडते हो, तथा दाता ने न तो जिससे प्रत्युपकार प्राप्त किया हो और न आगे प्रत्युपकार प्राप्त होने की सम्भावना ही हो ऎसे ही लोगों को गोदान करना चाहिए; धनवानो को नहीं ।``[7] एक गौ एक ही ब्राह्मण को देनी चाहिए; बहुतों को कभी नहीं क्योकि एक ही गौ यदी बहुतों को दी गयी तो वे उसे बेचकर उसकी कींमत बांट लेंगे । दान की हुई गौ यदि बेच दी गयी, तो वह दाता की तीन पीढियों को हानि पहुंचाती है । वह न तो दाता को ही पार उतारती है न ब्राह्मण को ।[8] यदि कोई रास्ते के थके-मांदे, दुबले-पतले पथिक धूलभरे पैरोंसे भूखे – प्यासे आ जाय और पूछे कि क्या यहां कोई भोजन देनेवाला है ? उस समय उन्हें जो विद्वान अन्न मिलने का पता बता देता है, वह अन्नदाता के समान ही माना जाता है ।[9] पितामह भीष्म के अनुसार क्रोध का अभाव, सत्य भाषण, अहिंसा, इन्द्रियसंयम, सरलता, द्रोहहीनता, अभिमानशून्यता, लज्जा, सहनशीलता, दम और मनोनिग्रह – ये गुण जिनमें स्वभावत: दिखायी दें और धर्मविरुद्ध कार्य दृष्टिगोचर न हों, वे ही दानके लिए उत्तम पात्र है ।[10]

(४)निन्दित दान

जिसे दान देने की आवश्यकता नहीं है अथवा जिनको दान देने का शास्त्रों में निषेध है उसे दान देना व्यर्थ एवं निन्दित माना गया है। मार्कण्डेयजी कहते है कि जो वानप्रस्थ या सन्यास आश्रमसे पुन: गृहस्थाश्रममें लौट आया हो, उसे **‘आरुढ – पतित’** कहते है । उसे दिया

---

[7] महाभारत वनपर्व २००/२७,२८

[8] महाभारत वनपर्व २००/२९

[9] महाभारत वनपर्व २००/३३,३४

[10] महाभारत अनुशाशनपर्व ३७/८,९

हुआ दान व्यर्थ होता है ।[11] अन्याय से कमाये हुए धन का दान, पतित ब्राह्मण तथा चोरको दिया हुआ दान व्यर्थ होता है । इसके अतिरिक्त पिता आदि गुरुजन, मिथ्याचारी, पापी, कृतघ्न, ग्रामपुरोहित, वेदविक्रयकरनेवाले, शुद्रसे यज्ञ करानेवाले, नीच ब्राह्मण, शुद्रा के पति ब्राह्मण, साप को पकडकर व्यवसाय करनेवाले तथा सेवकों और स्त्रीसमूह को दिया हुआ दान – यह सोलह प्रकार के दान निन्दित अर्थात व्यर्थ माने गये है ।[12]

(५)दान का महत्त्व

दानयोग्य पात्र को प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित होकर दान देने का अधिक महत्त्व है । भासरचित कर्णभार में कर्ण शल्य को दान का महत्त्व बताते हुए कहते है कि –

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥[13]

महर्षि व्यास युधिष्ठिर से कहते है कि, “दु:ख सहकर कमाये हुए धन का परित्याग करना अत्यन्त कठिन है । दान से बढकर दूसरा कोई दुष्कर कार्य नहीं है । इसिलिये मेरे मतमें दान ही सर्वश्रेष्ठ है ।“[14] यदि विशुद्ध मन से उत्तम समय पर सुपात्र को थोडा–सा भी दान दिया गया हो तो वह परलोकमें अनन्त फल देनेवाला माना गया है ।[15]

मार्कण्डेयजी ब्राह्मण को दिये जानेवाले दान का महत्त्व बताते हुए युधिष्ठिर से कहते है कि जो विशुद्ध – ब्राह्मण को सुवर्णदान करता है ।

---

[11] महाभारत वनपर्व २००/०६

[12] महाभारत वनपर्व २००/७,८

[13] भासरचित कर्णभार श्लोक -२२

[14] महाभारत वनपर्व २५९/३१

[15] महाभारत वनपर्व २५९/३४

उसे निरन्तर सौ सुवर्णमुद्राओंके दान का फल प्राप्त होता है ।[16] जो विद्वान ब्राह्मणको भूमिदान करता है उस दाता के पास सभी मनोवाञ्छित भोग स्वतः आ जाते है ।[17] भीष्मजी के अनुसार जलदान करने से मनुष्यको अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है, तथा अन्न – दान करने से मनुष्यको काम और भोग से पूर्णतः तृप्ति मिलती है ।[18] जो महाबुद्धिमान पुरुष पृथ्वी का दान करता है, वह सोना, चांदी, वस्त्र, मणि, मोती तथा रत्न – इन सभी दानों का फल प्राप्त कर लेता है ।[19] अन्न ही मनुष्योंके प्राण है, अन्न में ही सब प्रतिष्ठित है, अतः अन्नदान करनेवाला मनुष्य पशु, पुत्र, धन, भोग, बल और रूप भी प्राप्त कर लेता है ।[20]

निष्कर्ष

इस प्रकार महाभारतमें महर्षि व्यास, श्रीकृष्ण, भीष्म, मार्कण्डेय एवं अन्य पात्रों द्वारा दान की पवित्रता, अनिवार्यता तथा महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है । जो मनुष्य अपने सामर्थ्य के अनुसार सुपात्र को भूमि, जल, अन्न, सुवर्ण, विद्या, गौ आदि का दान देता है उसे पुण्य़ की प्राप्ति होती है । उसी प्रकार कुपात्र व्यक्ति को दान देना निन्दनीय माना गया है । दानमें त्याग और परोपकारकी भावना होने के कारण उसे पवित्र माना गया है । एक हाथ से दिया गया दान हजारो हाथों से लौटता है । धन की तीनों गतियों (दान, भोग और नाश) में दान को उत्तम, भोग को मध्यम और जो पुरुष न दान देता है, न भोगता है उसके धन को तीसरी गति प्राप्त होती है । इस प्रकार महाभारतमें दान को अत्यन्त उत्तम माना गया है ।

---

[16] महाभारत वनपर्व २००/३०

[17] महाभारत वनपर्व २००/३२

[18] महाभारत अनुशाशनपर्व ५७/२०

[19] महाभारत अनुशाशनपर्व ६२/२३

[20] महाभारत अनुशाशनपर्व ६३/२५,२६

सन्दर्भग्रन्थ

१. भगवद्गीता - स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ,धन्तोल, नागपुर, ८/२०११
२. तैत्तरीय उपनिषद – गीताप्रेस गोरखपुर ९/सं.२०१९
३. महाभारत (वनपर्व) खण्ड -२, १५/ सं. २०७२
४. महाभारत (शान्तिपर्व) खण्ड – ५,१५/सं२०७२
५. महाभारत (अनुशासनपर्व) खण्ड – ६,१५/ सं. २०७२
६. कर्णभारम – महामहिमश्रीमूलकरामवर्मकुलशेखर महाराजशासनेन प्रकाशितं त्रिवेंद्रम १/ई.१९१२